खुद की नकल, खुद की सुरक्षा
क्या है ऑटोमिमिक्री?

संकेत राउत

न्यू जर्सी के उस स्कूल का एक छात्र, जब उसके सभी दोस्त कक्षा में बैठे थे, स्कूल परिसर में घूमकर पतंगों की प्रजातियाँ खोज रहा था। उसके शिक्षक ने उसे यह सज़ा दी थी। स्कूल छूटने तक उसने यही काम किया। स्कूल छूटते समय उसके शिक्षक ने उसे बुलाया और पूछा कि क्या वह दिन उसके लिए सही था, ठीक था?

उस छात्र ने शिक्षक को एक शब्द में उत्तर दिया, "निश्चित रूप से!"

उस छात्र का नाम था - लिंकन ब्राउर (1931-2018)। लिंकन ब्राउर ने कीट विज्ञान में बड़ा योगदान दिया। विशेष रूप से मोनार्क तितलियों (*Danaus plexippus*) पर उनका शोध महत्वपूर्ण रहा। इन तितलियों के संरक्षण के लिए भी लिंकन ब्राउर ने विशेष प्रयास किए।

लिंकन ब्राउर को कम उम्र में ही तितलियाँ और पतंगे (moth) एकत्र करने का शौक लग गया था। इसी रुचि के चलते उन्होंने इन प्रजातियों के जीवविज्ञान का अध्ययन शुरू किया। कई दशकों तक लिंकन ब्राउर मोनार्क तितलियों के अग्रणी विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते रहे। इन्हीं मोनार्क तितलियों के अध्ययन के आधार पर उन्होंने 1967 में सर्वप्रथम 'ऑटोमिमिक्री' की संकल्पना प्रस्तुत की। उनके सम्मान में इस प्रकार के अनुकरण को 'ब्राउरियन अनुकरण' भी कहा जाता है। यह मिमिक्री अब तक वर्णित अन्य प्रकारों से कुछ भिन्न है। आइए, मोनार्क तितली के उदाहरण के माध्यम से इसे समझने का प्रयास करें।

मोनार्क तितलियाँ

अमेरिका महाद्वीप में पाई जाने वाली मोनार्क तितलियाँ प्रवास के लिए प्रसिद्ध हैं। मोनार्क तितलियों का प्रवास प्रकृति के सबसे आश्चर्यजनक दृश्यों में से एक है। हर साल, लाखों तितलियाँ कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका की कड़ाके की ठण्ड से बचने के लिए लगभग 3,000 मील (4,800 किलोमीटर) की लम्बी यात्रा तय करके मध्य मैक्सिको के ओयामेल देवदार के जंगलों में पहुँचती हैं। इस अविश्वसनीय यात्रा की सबसे खास बात यह है कि अपने अल्प जीवनकाल के कारण ये तितलियाँ अपनी पूरी यात्रा को एक ही पीढ़ी में पूरा नहीं

चित्र-1: *मोनार्क तितली*

करतीं, बल्कि अगली पीढ़ियाँ भी उसी मार्ग को जारी रखती हैं, जहाँ उनके पूर्वजों ने उन्हें छोड़ा था। वे नेविगेशन के लिए सूर्य की स्थिति और पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का उपयोग करती हैं, और बसन्त आने पर वे फिर से उत्तर की ओर अपनी वापसी की यात्रा शुरू कर देती हैं।

मोनार्क तितली कुछ हद तक स्ट्राइप्ड टाइगर तितली से मिलती-जुलती दिखाई देती है, जो बेट्सियन मिमिक्री में मॉडल की भूमिका निभाती है। स्ट्राइप्ड टाइगर की तरह मोनार्क तितली भी एपोसेमैटिज़्म* (aposematism) का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह भी मुख्यतः मिल्कवीड (Asclepias spp.) पौधों पर निर्भर रहती है। इन पौधों के लेटेक्स-युक्त रस में कार्डेनोलाइड नामक विषैले यौगिक पाए जाते हैं, जिन्हें मोनार्क अपने शरीर में संचित कर लेती है। यही विषैले यौगिक इसे शिकारी प्रजातियों के लिए अखाद्य बना देते हैं। परिणामस्वरूप, स्ट्राइप्ड टाइगर की भाँति मोनार्क के चटकीले रंग भी शिकारियों के लिए चेतावनी का संकेत देते हैं कि उससे दूर रहना ही सुरक्षित है।

मिल्कवीड पौधों में पाए जाने वाले कार्डेनोलाइड को अधिकांश कीट पचा नहीं पाते। लेकिन स्ट्राइप्ड टाइगर, कॉमन क्रो या फिर कॉमन

---

* *जीवों की एक रक्षात्मक रणनीति, जिसमें कोई जीव अपने चटकीले रंगों, विशिष्ट पैटर्न, गन्ध, ध्वनि या अन्य स्पष्ट संकेतों के माध्यम से सम्भावित शिकारियों को यह चेतावनी देता है कि वह विषैला, अखाद्य, खतरनाक या किसी अन्य कारण से नुकसानदायक है।*

Cynanchum (स्वैलो-वर्ट) वंश के कुछ देशी और विदेशी मिल्कवीड पौधे भी मोनार्क तितलियों को अपने ऊपर अण्डे देने के लिए आकर्षित करते हैं, परन्तु Cynanchum प्रजातियाँ मोनार्क इल्लियों के लिए उपयुक्त आहार नहीं हैं, और इसके चलते इन पर पलने वाली इल्लियाँ प्यूपा अवस्था तक पहुँचने में असफल हो जाती हैं। इस प्रकार ये पौधे अनिवार्यतः 'झूठे परपोषी' (false hosts) हैं, जो कार्डेनोलाइड से सुरक्षा प्रदान नहीं करते।

रोज़ तितली की इल्लियों की तरह ही मोनार्क इल्लियाँ भी मिल्कवीड की पत्तियाँ खाते समय, इन्हें अपने शरीर में संचित कर लेती हैं, जिससे वे स्वयं सम्भावित शिकारियों के लिए विषैली बन जाती हैं।

परन्तु सभी मिल्कवीड प्रजातियों में कार्डेनोलाइड की मात्रा समान नहीं होती, और यही तथ्य ऑटोमिमिक्री को समझने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कुछ मिल्कवीड प्रजातियों में कार्डेनोलाइड विष का स्तर अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक होता है, जबकि कुछ में यह कम होता है। कार्डेनोलाइड विष के स्तर में पाई जाने वाली यही विविधता ब्राउरियन अनुकरण यानी मिमिक्री की कुंजी सिद्ध होती है।

जिन मिल्कवीड प्रजातियों में कार्डेनोलाइड विष की सान्द्रता बहुत कम होती है, उन पर पली-बढ़ी मोनार्क इल्लियाँ अपने शरीर में पर्याप्त मात्रा में विष संचित नहीं कर पातीं। परिणामस्वरूप, उनसे विकसित होने वाली मोनार्क तितलियाँ शिकारियों के लिए काफी हद तक स्वादिष्ट (palatable) सिद्ध होती हैं। अर्थात्, बेट्सियन अनुकरण में जहाँ अनुकरणकर्ता प्रजाति स्वादिष्ट होती है, वहीं ब्राउरियन अनुकरण में एक ही प्रजाति की सभी मोनार्क तितलियाँ समान रूप से अखाद्य नहीं होतीं; कुछ अपेक्षाकृत स्वादिष्ट भी हो सकती हैं।

एक ही प्रजाति की होने के कारण, खाद्य और अखाद्य, दोनों प्रकार की मोनार्क तितलियों का रंग-रूप एक-जैसा होता है। यद्यपि शिकारी अपेक्षाकृत स्वादिष्ट मोनार्क तितलियों को खा सकते हैं, फिर भी यदि उन्हें पहले किसी अत्यधिक विषैली और अखाद्य मोनार्क तितली को खाने का अप्रिय अनुभव हो चुका हो, तो वे बाद में उसी रंग-रूप वाली हानिरहित मोनार्क तितलियों पर भी हमला करने से परहेज़ करते हैं।

आम तौर पर, मॉडल और अनुकरण करने वाली प्रजातियाँ अलग-अलग होती हैं। ब्राउर ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि मोनार्क तितलियों के इस मामले में अनुकरण एक ही प्रजाति के भीतर हो रहा है। इसलिए उन्होंने इसे अनुकरण का एक अलग प्रकार माना,

जिसे 'ऑटोमिमिक्री' कहा गया। दूसरे शब्दों में, ऑटोमिमिक्री में मॉडल और अनुकरणकर्ता, दोनों एक ही प्रजाति के सदस्य होते हैं। इस प्रकार, अपेक्षाकृत हानिरहित सदस्य, उसी प्रजाति के अधिक विषैले एवं अखाद्य सदस्यों से मिलते-जुलते होने का लाभ उठाकर शिकारियों को भ्रमित करते हैं।

लिंकन ब्राउर ने न केवल ऑटोमिमिक्री की अवधारणा को स्पष्ट किया, बल्कि मोनार्क तितली पर कई रोचक प्रयोग भी किए, जिन्होंने इस अनुकरण की व्याख्या को मज़बूत वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इन प्रयोगों के बारे में जानने से पहले, आइए ऑटोमिमिक्री के एक अन्य प्रकार पर दृष्टि डालें, जिसका वर्णन लिंकन ब्राउर के जन्म से कई वर्ष पहले ही एक अन्य प्रतिभाशाली शोधकर्ता ने किया था।

सर एडवर्ड बी. पोल्टन (1856-1943)

वैसे, इनके शोध का सम्बन्ध बेट्सियन और म्यूलेरियन अनुकरण पर किए गए अध्ययनों से भी जुड़ा हुआ है। अनुकरण के इन प्रकारों की चर्चा करते समय हमने सह-अस्तित्व (sympatry) और आवृत्ति-निर्भर चयन (frequency-dependent selection) जैसी अवधारणाओं का उल्लेख किया था। इन महत्वपूर्ण अवधारणाओं को प्रतिपादित करने का श्रेय ब्रिटिश जीवविज्ञानी एडवर्ड बैगनॉल पोल्टन (Edward Bagnall Poulton) को जाता है।

सन् 1890 में पोल्टन ने अनुकरण के एक ऐसे प्रकार का वर्णन किया, जो ऑटोमिमिक्री की अवधारणा से निकटता से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार के अनुकरण में किसी प्रजाति के शरीर का अपेक्षाकृत कम संवेदनशील भाग, जैसे कि पूँछ, अधिक संवेदनशील भाग, जैसे कि सिर, का आभास कराता है। उदाहरण के लिए, कुछ प्रजातियों के शरीर पर आँखों जैसे धब्बे (eyespots) पाए जाते हैं, जबकि कुछ में शरीर के पिछले भाग पर सिर जैसा आकार विकसित हो जाता है, जिसे 'नकली सिर' कहा जाता है। यदि शिकारी का हमला वास्तविक सिर की बजाय इस नकली सिर पर होता है, तो जीव को कुछ क्षति ज़रूर पहुँच सकती है, लेकिन उसके जीवित बच निकलने की सम्भावना काफी बढ़ जाती है। इस प्रकार का अनुकरण मछलियों, साँपों और तितलियों सहित अनेक प्राणियों में देखा जाता है।

कुछ विशेष उदाहरण

भारत में लाइकेनिडी (Lycaenidae) कुल की अनेक छोटी तितलियाँ पाई जाती हैं। इस कुल की अधिकांश तितलियाँ हानिरहित होती हैं। इनके शरीर में किसी प्रकार के अखाद्य या विषैले रसायन नहीं होते, इसलिए पक्षी जैसे शिकारी इन्हें आसानी-से

अपना शिकार बना लेते हैं। मैंने स्वयं एशियन ग्रीन बी-ईटर जैसे पक्षियों को लाइकेनिडी कुल की तितलियों का शिकार करते हुए देखा है।

पीकॉक रॉयल

इसी कुल की एक और आकर्षक और हानिरहित तितली है पीकॉक रॉयल। इसके पिछले पंखों पर, सिर की विपरीत दिशा में, काले रंग का आँख जैसा धब्बा पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, पिछले पंखों के सिरों पर धागे जैसी पतली पूँछनुमा संरचनाएँ (filamentous tails/ hairstreaks) होती हैं, जो देखने में तितली के एंटीना जैसी प्रतीत होती हैं। विशेष बात यह है कि यह तितली इन पूँछनुमा संरचनाओं को अपने वास्तविक एंटीना की भाँति लगातार हिलाती-डुलाती रहती है। परिणाम-स्वरूप, शिकारी को भ्रम हो सकता है कि तितली का सिर शरीर के उस पिछले भाग पर स्थित है।

पंखों पर बना आँख जैसा धब्बा और एंटीना जैसी हिलती हुई संरचनाएँ मिलकर उस भाग पर एक नकली सिर का आभास उत्पन्न करती हैं। परिणामस्वरूप, शिकारी का हमला तितली के वास्तविक सिर की बजाय उसके पंखों पर स्थित इस नकली सिर की ओर निर्देशित हो सकता है। ऐसी स्थिति में, तितली के उड़कर बच निकलने पर अक्सर उसके पंख का केवल एक छोटा-सा हिस्सा ही शिकारी के मुँह में रह जाता है। यद्यपि इस दौरान पंखों को कुछ क्षति पहुँचती है, फिर भी तितली की जान बच जाती है। यही कारण है कि ऐसी तितलियों के पंख प्रायः फटे या कटे हुए दिखाई देते हैं। यह तथ्य इस प्रकार की ऑटोमिमिक्री की प्रभावशीलता और उसके अनुकूलनात्मक (adaptive) महत्व को स्पष्ट करता है।

चित्र-2: *पीकॉक रॉयल तितली। सिर किस तरफ?!*

चित्र-3: *पीकॉक रॉयल तितली के पिछले हिस्से के कटे हुए पंख।*

फोटो - संकेत राउत

फोरआई बटरफ्लाई फिश

फोरआई बटरफ्लाई फिश (foureye butterfly fish) भी इस प्रकार की ऑटोमिमिक्री का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस मछली की पूँछ के आधार पर बड़े-बड़े आँख जैसे धब्बे होते हैं। इसके अतिरिक्त, इसके शरीर का आकार भी ऐसा होता है कि पहली नज़र में सिर और पूँछ वाले दोनों सिरे काफी हद तक एक-जैसे दिखाई देते हैं। खतरा महसूस होने पर यह मछली धीरे-धीरे पीछे की ओर तैरती है, जिससे शिकारी के लिए पूँछ को सिर समझने की सम्भावना और बढ़ जाती है। यदि शिकारी वास्तविक सिर की बजाय पूँछ पर हमला करता है, तो मछली को तुरन्त छिटककर बच निकलने का अवसर मिल जाता है।

इस तरह फोरआई बटरफ्लाई फिश शिकारी को कम-से-कम दो तरीकों से भ्रमित करती है। पहला, वह वास्तविक सिर के स्थान पर पूँछ की ओर हमला करवाती है। दूसरा, वह अपनी तैरने की दिशा के बारे में भी शिकारी को गलत संकेत देती है। इतना ही नहीं, इस मछली में वास्तविक आँख को कम स्पष्ट दिखाने की भी एक व्यवस्था होती है। इसके सिर पर एक गहरी ऊर्ध्वाधर काली पट्टी होती है, जो वास्तविक आँख के ऊपर से गुज़रती है और उसे आंशिक रूप से छिपा देती है। माना जाता है कि इससे शिकारी के लिए वास्तविक आँख की पहचान करना और कठिन हो जाता है। हालाँकि, इस अन्तिम परिकल्पना के समर्थन में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाण अभी निर्णायक नहीं हैं, इसलिए इस विषय पर शोध अभी भी जारी है।

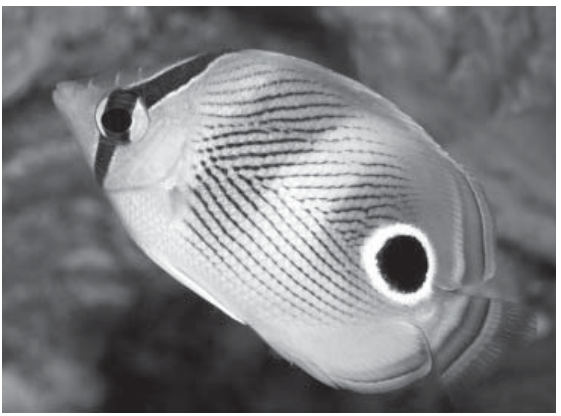

चित्र-4: *फोरआई बटरफ्लाई फिश। कौन-सी आँख असली?!*

नकली चेहरे वाला उल्लू

भारत के पहाड़ी वनों में एक छोटा-सा उल्लू पाया जाता है, कॉलर्ड आउलेट *(Glaucidium brodiei)*। यह उल्लू मुख्यतः छोटे जीवों का शिकार करके अपना जीवन-निर्वाह करता है। लेकिन आकार में छोटा होने के कारण यह स्वयं भी बड़े शिकारी पक्षियों और अन्य परभक्षियों का

शिकार बन सकता है। ऐसे खतरों से बचने के लिए इसमें एक अद्‌भुत रक्षात्मक युक्ति विकसित हुई है।

कॉलर्ड आउलेट की गर्दन के पीछे, अर्थात् नेप पर, काले और सफेद धब्बों (ocelli) से बना एक नकली चेहरा दिखाई देता है। यह पैटर्न ऐसा प्रतीत होता है मानो उल्लू अपनी आँखें खोलकर पीछे की ओर देख रहा हो। जब यह किसी डाल पर बैठकर आगे की ओर देख रहा होता है, तब पीछे से आने वाले शिकारी को भ्रम हो सकता है कि उल्लू पहले से ही उस पर नज़र रखे हुए है। इस कारण शिकारी अक्सर हमला करने से हिचकिचाता है। साथ ही, ये बड़े और स्पष्ट धब्बे किसी अपेक्षाकृत बड़े जीव का आभास भी करा सकते हैं, जिससे शिकारी उसका पीछा छोड़ सकता है।

शिकार का पीछा करके उसे पकड़ने में शिकारी को पर्याप्त ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। इसलिए अधिकांश शिकारी प्रजातियाँ ऐसे शिकार को प्राथमिकता देती हैं, जिसे कम-से-कम ऊर्जा खर्च करके पकड़ा जा सके। यदि लक्षित भक्ष्य पहले से ही शिकारी को देख रहा हो, तो हमला होते ही उसके बच निकलने की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसी असफल कोशिश शिकारी के लिए केवल ऊर्जा की हानि सिद्ध होती है। यही कारण है कि शिकारी प्रायः ऐसे भक्ष्य की तलाश करते हैं, जो असावधान हो और उन्हें आते हुए न देख पाए। इस प्रकार, कॉलर्ड आउलेट ऑटोमिमिक्री का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसमें जीव अपने ही शरीर के एक भाग का उपयोग दूसरे भाग (सिर और चेहरे)

चित्र-5: *कॉलर्ड आउलेट का सामने से चेहरा और गर्दन का पिछला हिस्सा।*

का आभास उत्पन्न करने के लिए करता है।

कनखजूरा

कनखजूरे (centipede) में भी ऑटोमिमिक्री का एक रोचक उदाहरण देखने को मिलता है। इसके शरीर के दोनों सिरे पहली दृष्टि में सिर जैसे प्रतीत हो सकते हैं, यद्यपि इनमें से केवल एक ही वास्तविक सिर होता है। कनखजूरे का शरीर अनेक खण्डों से बना होता है और उसका अन्तिम शरीर-खण्ड आकार एवं रंग के कारण सिर जैसा दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त, अन्तिम पैरों की जोड़ी भी लम्बी और एंटीना जैसी प्रतीत होती है। परिणामस्वरूप, वास्तविक सिर, जिसमें विषैले फॉर्सीप्यूल्स (forcipules) होते हैं, और शरीर के पिछले सिरे के बीच अन्तर कर पाना शिकारियों के लिए कठिन हो जाता है। यदि शिकारी नकली सिर की दिशा में हमला करता है, तो प्रायः शरीर का पिछला भाग ही क्षतिग्रस्त होता है, जिससे कनखजूरे के बच निकलने की सम्भावना बढ़ जाती है। मैंने स्वयं मुर्गियों और अन्य पक्षियों को कनखजूरों पर हमला करते और उन्हें खाते हुए देखा है।

अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि कनखजूरे का डंक या विषदंश अत्यन्त दर्दनाक होता है। यदि कोई शिकारी नकली सिर के भ्रम में आकर उसे शरीर के पिछले सिरे से पकड़ ले, तो कनखजूरा तुरन्त अपना शरीर मोड़कर अपने विषैले फॉर्सीप्यूल्स से उस पर प्रहार करता है। इस अप्रत्याशित विषदंश से शिकारी क्षणभर के लिए कनखजूरे को छोड़ सकता है या पीछे हट सकता है। यही अवसर कनखजूरे को वहाँ से तेज़ी-से भाग निकलने का मौका प्रदान करता है।

शील्ड-टेल्ड साँप

शील्ड-टेल्ड साँप पश्चिमी घाट की एक स्थानिक प्रजाति है। अर्थात्, यह समूह प्राकृतिक रूप से केवल भारत के पश्चिमी घाट में ही पाया जाता है और संसार के किसी अन्य भाग में नहीं मिलता। इस समूह की एक प्रजाति मुम्बई और पुणे के बीच स्थित लोणावला क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पाई जाती है।

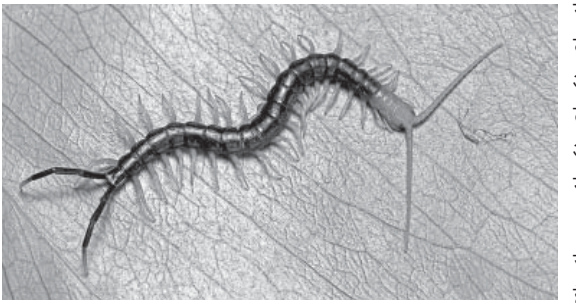

चित्र-6: *कनखजूरा। पहचानिए, सिर किस ओर है?!*

जब शील्ड-टेल्ड साँपों पर हमला होता है, तो वे अपना

चित्र-7: *शील्ड-टेल्ड साँप। है न मुश्किल, सिर और पूँछ पहचानना?!*

वास्तविक सिर शरीर की कुण्डलियों के बीच सुरक्षित छिपा लेते हैं और अपनी ढाल जैसी पूँछ को ऊपर उठाकर हिलाने लगते हैं। इससे शिकारी को भ्रम हो सकता है कि वही साँप का सिर है, और वह उसी पर हमला कर बैठता है। पूँछ पर हुआ हमला वास्तविक सिर पर हुए हमले की तुलना में साँप के लिए कहीं कम घातक होता है। इस प्रकार, शरीर के पिछले सिरे को नकली सिर के रूप में प्रस्तुत करने की यह युक्ति शील्ड-टेल्ड साँपों के जीवित बच निकलने की सम्भावना को बढ़ा देती है।

ऑटोमिमिक्री के फायदे

शिकारी का हमला शरीर के कम संवेदनशील भाग की ओर मोड़ देने वाली ऐसी विशेषताओं को प्राकृतिक चयन सहज रूप से प्रोत्साहित करता है। जिन जीवों में ऐसी प्रभावी युक्ति नहीं होती, उनके शिकारियों का शिकार बनने की सम्भावना अधिक रहती है। इसके विपरीत, 'फॉल्स हेड' जैसी युक्ति रखने वाले जीव अधिक बार हमले से बच निकलते हैं और उन्हें जीवित रहकर प्रजनन करने का बेहतर अवसर मिलता है। परिणाम-स्वरूप, ऐसे लक्षण अगली पीढ़ियों में अधिक बार स्थानान्तरित होते जाते हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक चयन के माध्यम से यह अनुकूलन विकसित और सुदृढ़ होता है। इसलिए ऑटोमिमिक्री को शिकारियों से रक्षा करने वाली एक महत्वपूर्ण विकासवादी युक्ति माना जाता है।

मोनार्क तितली व ब्रोवर का प्रयोग

ऑटोमिमिक्री में मोनार्क तितली का उदाहरण उपर्युक्त सभी उदाहरणों से भिन्न है। अन्य उदाहरणों में जीव

अपने शरीर के किसी एक भाग को दूसरे भाग जैसा प्रदर्शित करके शिकारियों को भ्रमित करता है, जबकि मोनार्क तितली के मामले में अनुकरण शरीर के किसी अंग का नहीं होता। यहाँ अनुकरण एक ही प्रजाति के सदस्यों के बीच होता है। इस प्रजाति के कुछ सदस्य अत्यधिक विषैले और अखाद्य होते हैं, जबकि कुछ में विष की मात्रा कम होने के कारण वे अपेक्षाकृत स्वादिष्ट होते हैं। फिर भी सभी सदस्यों का रंग-रूप लगभग एक-जैसा होने के कारण अपेक्षाकृत स्वादिष्ट सदस्य भी अधिक विषैले और अखाद्य सदस्यों की चेतावनीपूर्ण रंगत (warning coloration) का लाभ उठाकर शिकारियों से सुरक्षा प्राप्त कर लेते हैं। यही विशेषता मोनार्क तितली की ऑटोमिमिक्री को अन्य सभी उदाहरणों से अलग बनाती है।

इस अनुकरण के सफलतापूर्वक बने रहने के लिए कुल आबादी में अखाद्य तितलियों की संख्या हानिरहित तितलियों की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए। ऐसा इसलिए ज़रूरी है क्योंकि यदि शिकारी के अधिकांश हमले अखाद्य तितलियों पर होंगे, तो वह उनके अप्रिय स्वाद या विषाक्तता के कारण आगे चलकर समान दिखने वाली हानिरहित तितलियों से भी कन्नी काटने लगेगा। इसके विपरीत, यदि हानिरहित तितलियों की संख्या अधिक होगी, तो शिकारी अधिकतर स्वादिष्ट तितलियाँ ही खाएगा और कभी-कभार किसी अखाद्य तितली को खाकर भी अपने अनुभव से इस समानता को अनदेखा कर सकता है। ऐसी स्थिति में अनुकरण का लाभ समाप्त हो जाएगा और हानिरहित तितलियों की प्रजाति के अस्तित्व पर भी संकट उत्पन्न हो सकता है।

इस सन्दर्भ में ब्राउर ने एक रोचक प्रयोग किया। उन्होंने कुछ मोनार्क तितलियों को इल्ली अवस्था से ही गोभी के पत्तों पर पाला। ब्लू जे एक कीटभक्षी पक्षी है, जिसके आहार में तितलियाँ भी शामिल होती हैं। ब्राउर ने इन पक्षियों को गोभी के पत्तों पर पली हुई मोनार्क तितलियाँ खिलाने का प्रयास किया। सामान्यतः इन तितलियों को ब्लू जे पक्षी आसानी-से खा सकते थे, क्योंकि इनमें मिल्कवीड से प्राप्त विषैले रसायन नहीं थे। लेकिन जिन ब्लू जे पक्षियों ने पहले मिल्कवीड पर पली हुई अखाद्य मोनार्क तितलियाँ खाई थीं, वे बाद में गोभी के पत्तों पर पली हुई इन स्वादिष्ट मोनार्क तितलियों को भी खाने से बचते रहे। ब्राउर ने अपने प्रयोग में इस व्यवहार का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया।

मोनार्क तितली में ऑटोमिमिक्री का अध्ययन करते समय एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है। जब सभी तितलियों के पास विषैले रसायन प्राप्त कर अखाद्य बनने का अवसर

होता है, तब कुछ तितलियाँ इस अवसर का उपयोग क्यों नहीं करतीं? वे स्वयं को उपलब्ध इस सुरक्षा कवच से वंचित क्यों रखती हैं? पहली दृष्टि में यह व्यवहार अविवेकपूर्ण प्रतीत हो सकता है। यदि शिकारी पर्याप्त अनुभवी या चतुर हो, तो वह मोनार्क तितलियों पर बार-बार हमला कर सकता है, क्योंकि उसे ज्ञात होगा कि उनमें से कुछ तितलियाँ स्वादिष्ट और खाने योग्य भी हैं। यदि उसके हाथ कोई अखाद्य तितली लग भी जाए, तो वह उसे अप्रिय स्वाद के कारण थूक सकता है और अगली तितली का परीक्षण कर सकता है। ऐसी स्थिति में अखाद्य तितलियाँ भी जोखिम में पड़ जाएँगी, क्योंकि खाने योग्य और अखाद्य तितलियों में भेद करने का एकमात्र उपाय प्रत्येक तितली को पकड़कर, उसका स्वाद लेना होगा। यदि वास्तव में ऐसा होता, तो ऑटोमिमिक्री से मिलने वाला सुरक्षात्मक लाभ समाप्त हो जाता। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि इन सभी सम्भावित कठिनाइयों के बावजूद यह ऑटोमिमिक्री प्रकृति में आज भी बनी हुई है। आखिर ऐसा क्यों है?

खतरा तो बना रहता है

इसका एक सम्भावित स्पष्टीकरण यह है कि इस प्रकार की ऑटोमिमिक्री शिकारियों को तितलियों पर हमला करने से पूरी तरह नहीं रोकती, बल्कि उन्हें सावधानीपूर्वक निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है। दूसरे शब्दों में, कुछ शिकारी इन तितलियों पर पहले हमला करके यह परखते हैं कि वे खाने योग्य हैं या नहीं। यदि तितली अखाद्य निकलती है, तो वे उसे अप्रिय स्वाद के कारण थूक देते हैं, वहीं यदि वह हानिरहित व खाने योग्य होती है, तो उसे खा लेते हैं।

अनुकरण करने वाले जीवों पर शिकारियों द्वारा हमले होने की पुष्टि विभिन्न प्रयोगों से हुई है। उदाहरण के लिए, बेट्सियन अनुकरण के सन्दर्भ में एक प्रयोग में विषहीन स्कार्लेट किंगस्नेक, जो विषैले ईस्टर्न कोरल स्नेक की नकल करता है, की कृत्रिम प्रतिकृतियों पर शिकारियों के हमलों का अवलोकन किया गया था। इससे स्पष्ट होता है कि किसी खतरनाक या विषैली प्रजाति जैसा विशिष्ट रंग-रूप धारण कर लेने मात्र से सभी शिकारी हमले करना बन्द नहीं कर देते। अनेक शिकारी पहले सम्भावित शिकार की जाँच या परीक्षण करते हैं और उसके बाद ही यह निर्णय लेते हैं कि उसे खाया जाए या छोड़ दिया जाए।

इसलिए यदि अनुकरण करने वाली हानिरहित तितलियों में अगर चन्द ही शिकारी के हमलों से बच पाती हों, तो ऊर्जा की बचत के कारण उनका प्रजनन भले ही अपेक्षाकृत अधिक हो, फिर भी उनकी आबादी का अनुपात बहुत अधिक

नहीं बढ़ पाएगा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किसी आबादी में अनुकरण करने वाले जीवों की संख्या सामान्यतः सीमित ही क्यों रहती है। लेकिन इससे एक और महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। यदि अनुकरण करने वाले इतने अधिक जीव अन्ततः शिकारियों के हमलों का सामना करने वाले हैं, तो उनमें ऐसी रणनीति क्यों विकसित हुई, जो उन्हें शिकारियों का ध्यान आकर्षित करने वाले रंग-रूप से जोड़ देती है? दूसरे शब्दों में, शिकारी की दृष्टि में अधिक स्पष्ट दिखाई देने का जोखिम उठाकर भी अनुकरण उनके लिए लाभकारी कैसे सिद्ध हुआ? ग्रेम डी. रक्सटन और माइकल पी. स्पीड ने गणितीय मॉडल्स के आधार पर ऑटोमिमिक्री के साथ जुड़े ऐसे कुछ सवालों की गुत्थी सुलझाने में अहम योगदान दिया।

ऊर्जा का गणित

इसे समझने के लिए हमें एक बार फिर ऊर्जा के गणित पर ध्यान देना होगा। शिकारी जब शिकार पकड़ता है, तो उसमें उसकी ऊर्जा भी खर्च होती है और कुछ समय भी जाता है। यदि उसके हाथ कोई अखाद्य तितली लगती है, तो उसे न केवल उसे पकड़ने में ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, बल्कि अन्ततः उसे छोड़ देना पड़ता है। अर्थात् उस प्रयास में लगाया गया समय और ऊर्जा, दोनों व्यर्थ चले जाते हैं। शिकारी इस प्रकार की हानि तभी तक सहन करेगा, जब तक उसे कुछ निश्चित मात्रा में हानिरहित तितलियाँ खाने को मिलती रहें। इसलिए हानिरहित और अखाद्य तितलियों के बीच एक सन्तुलित अनुपात बना रहना आवश्यक है। इसी सन्तुलन के कारण ऑटोमिमिक्री की यह व्यवस्था बनी रह सकती है और मोनार्क तितलियों की आबादी भी दीर्घकाल तक अपने अस्तित्व और वंश की निरन्तरता बनाए रख सकती है।

गणितीय मॉडलों के आधार पर इसे इस प्रकार समझा जा सकता है। यदि किसी आबादी में हानिरहित मोनार्क तितलियों का अनुपात बढ़ने लगे, तो उन पर शिकारियों के हमलों की सम्भावना भी बढ़ जाएगी। परिणामस्वरूप, शिकारी इन तितलियों में तब तक रुचि बनाए रखेगा, जब तक हानिरहित और अखाद्य तितलियों का अनुपात उस इष्टतम (optimal) स्तर तक वापस न पहुँच जाए, जहाँ उन्हें पकड़ने से मिलने वाला लाभ अपेक्षाकृत कम हो जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक चयन दोनों प्रकार की तितलियों के अनुपात को एक निश्चित 'क्रिटिकल वैल्यू' के आसपास बनाए रखने की प्रवृत्ति दिखाता है। यही सन्तुलन ऑटोमिमिक्री को लम्बे समय तक स्थिर बनाए रखता है और हानिरहित तितलियों को भी, विषैले रसायनों के

अभाव के बावजूद, पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, किसी मोनार्क तितली पर हमला करना है या नहीं, यह निर्णय मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि उस हमले से शिकारी को मिलने वाला सम्भावित लाभ उसकी ऊर्जा, समय और जोखिम की तुलना में कितना अधिक है।

यहाँ एक और महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। अखाद्य बनने के लिए भी तितलियों को ऊर्जा का निवेश करना पड़ता है। हानिरहित तितली अपेक्षाकृत अधिक प्रकार के पौधों पर अण्डे दे सकती है, जबकि अखाद्य तितली को ऐसे पौधों का चयन करना पड़ता है जिनसे उसकी इल्लियाँ विषैले रसायन प्राप्त कर सकें। साथ ही, इन रसायनों को ग्रहण करना, सहन करना और अपने शरीर में सुरक्षित रखना भी ऊर्जा तथा शारीरिक संसाधनों की माँग करता है। इसलिए यह माना जा सकता है कि अखाद्य तितलियाँ, हानिरहित तितलियों की तुलना में, उतनी तेज़ी-से अपना वंश विस्तार नहीं कर पाती होंगी। दूसरी ओर, हानिरहित तितलियाँ बिना यह अतिरिक्त लागत उठाए अखाद्य तितलियों के चेतावनी रंगों और शिकारियों के अनुभव का लाभ प्राप्त करती हैं। यदि उनकी प्रजनन दर भी अधिक हो, तो स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि समय के साथ पूरी आबादी हानिरहित तितलियों में ही क्यों नहीं बदल जाती?

इसका एक सम्भावित उत्तर यह है कि जब शिकारी किसी अखाद्य तितली पर हमला करता है, तो अप्रिय स्वाद या विषैले प्रभाव का अनुभव होने पर वह प्रायः उसे छोड़ देता है। यद्यपि ऐसे हमले में तितली को कुछ क्षति पहुँच सकती है, फिर भी उनमें से कम-से-कम कुछ तितलियाँ जीवित बचकर बाद में प्रजनन करने में सफल हो जाती हैं। इसके विपरीत, हानिरहित तितलियाँ यदि शिकारियों के हाथ लग जाएँ, तो उनके बच निकलने की सम्भावना बहुत कम होती है, क्योंकि उन्हें सामान्यतः खा लिया जाता है। परिणामस्वरूप, उन्हें प्रजनन के लिए अपेक्षाकृत कम अवसर मिलते हैं। इसलिए, भले ही हानिरहित तितलियों की प्रजनन दर अधिक हो, शिकार के कारण उनकी मृत्यु-दर भी अधिक रहती है। यही सन्तुलन दोनों प्रकार की तितलियों के अनुपात को एक विशिष्ट स्तर पर बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

लाजवाब सन्तुलन

मोनार्क तितली के उदाहरण से स्पष्ट होता है कि किसी एक ही प्रजाति में बाहरी रूप से एक-जैसे दिखाई देने वाले, लेकिन गुणों में भिन्न, कुछ अखाद्य और कुछ हानिरहित, सदस्य लम्बे समय तक

एकसाथ बने रह सकते हैं। इस सन्तुलन को बनाए रखने में प्राकृतिक चयन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विशेष रूप से, शिकारियों का अनुभव-आधारित व्यवहार इस व्यवस्था को स्थिर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मोनार्क तितलियों के सन्दर्भ में यह सम्भावना भी ध्यान में रखनी चाहिए कि अखाद्य बनने की क्षमता हर परिस्थिति में समान रूप से उपलब्ध नहीं होती। उदाहरण के लिए, जिन इल्लियों को अपने पोषक पौधों से विषैले रसायन प्राप्त होते हैं, वे आगे चलकर शिकारियों के विरुद्ध बेहतर सुरक्षा हासिल कर लेती हैं। लेकिन यदि किसी क्षेत्र में ऐसे उपयुक्त विषैले पौधों की उपलब्धता कम हो, तो मादा तितलियाँ विवश होकर अन्य पौधों पर भी अण्डे दे सकती हैं। ऐसे पौधों पर पली इल्लियों को आवश्यक विषैले रसायन प्राप्त नहीं हो पाते, परिणामस्वरूप वे वयस्क होने पर अपेक्षाकृत हानिरहित रह जाती हैं। ऐसी तितलियों को उसी प्रजाति की विषैले रसायन संचित कर अखाद्य बनी तितलियों के चेतावनी रंगों और शिकारियों के पूर्व अनुभव का लाभ मिलता है। इस प्रकार यह व्यवस्था मोनार्क तितलियों की पूरी आबादी के अस्तित्व और निरन्तरता बनाए रखने में सहायक हो सकती है।

कुल मिलाकर, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पर्यावरणीय परिस्थितियाँ समय और स्थान के अनुसार बदलती रहती हैं। ऐसी परिस्थितियों में कभी अधिक सुरक्षा (high defence) की रणनीति लाभकारी सिद्ध होती है, तो कभी कम सुरक्षा (low defence) की। इसलिए प्राकृतिक चयन किसी एक ही रणनीति का हमेशा समर्थन नहीं करता, बल्कि परिस्थितियों के अनुसार दोनों प्रकार की रणनीतियों के बीच सन्तुलन बनाए रख सकता है।

वास्तविकता यह है कि ऑटोमिमिक्री के विकासवादी और पारिस्थितिक महत्व को स्वीकार किए जाने के बावजूद, इस विषय पर अपेक्षाकृत कम सैद्धान्तिक अध्ययन हुए हैं। फिर भी, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यदि गणितीय मॉडलों में शिकारियों द्वारा शिकार पर खर्च होने वाले समय और ऊर्जा, भक्ष्य प्रजाति के भीतर उपस्थित विविधता तथा आवृत्ति-निर्भर (frequency-dependent) प्रक्रियाओं (या गुणों) को सम्मिलित किया जाए, तो पर्यावरणीय दृष्टिकोण से ऑटोमिमिक्री के दीर्घकाल तक बने रहने को गणितीय तरीके से समझाया जा सकता है।

* * *

यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या इस व्यवस्था को वास्तव में 'अनुकरण' कहा जाना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर देना थोड़ा कठिन है। फिर भी, इस स्थिति में हानिरहित

सदस्य अपनी ही प्रजाति के अखाद्य सदस्यों के समान चेतावनी-संकेतों का लाभ उठाकर शिकारियों को भ्रमित करते हैं। इस दृष्टि से यह व्यवस्था अनुकरण की मूल विशेषता को पूरा करती है, क्योंकि इसमें भ्रामक संकेत (deceptive signal) के माध्यम से शिकारियों के व्यवहार को प्रभावित किया जाता है। ठीक बेट्सियन अनुकरण की तरह, यहाँ भी शिकारी को हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि वह ऐसे सदस्यों को भी छोड़ देता है जिन्हें वह वास्तव में खा सकता था। अतः इस व्यवस्था को ऑटोमिमिक्री कहना उचित प्रतीत होता है।

चूँकि ऑटोमिमिक्री का उद्देश्य भी शिकारियों से बचकर जीवित रहना है, इसलिए इसे सुरक्षात्मक अनुकरण (protective mimicry) की श्रेणी में रखा जा सकता है। फिर भी, इसकी अवधारणा और विकासवादी आधार को और अधिक स्पष्ट करने के लिए आगे व्यापक अध्ययन की आवश्यकता है।

अनुकरण के ये रोचक किस्से और उदाहरण इस विषय को और भी आकर्षक बना देते हैं। लेकिन क्या आपके मन में यह प्रश्न आया कि जीव-जगत के इतिहास में अनुकरण की शुरुआत कब हुई होगी? इसका उत्तर जानने के लिए हमें करोड़ों वर्ष पुराने जीवाश्मों की गवाही लेनी होगी। तो अनुकरण के इतिहास के बारे में जीवाश्म हमें क्या बताते हैं, और एक बिलकुल अलग प्रकार के अनुकरण से हम अगले किसी लेख में रूबरू होंगे।

संकेत राउत: वन्यजीव प्रेमी हैं तथा वन्यजीव अध्ययनों में भाग लेते रहते हैं। पक्षी और तितलियाँ रुचि के मुख्य क्षेत्र हैं। जंगली जानवरों के बारे में पढ़ने में और उनके व्यवहार का विश्लेषण करने में आनन्द आता है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं और शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करते हैं।

सन्दर्भ:

https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC1560041/
https://en.wikipedia.org/wiki/Automimicry#cite_note-Robbins-12
https://www.researchgate.net/publication/17938393_Plant_poisons_in_a_terrestrial_food_chain